IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उपन्यासकार गिरिराज किशोर की दलित चेतना

अंकिता कुमारी
एम.ए. (हिन्दी), शोधार्थी
तिलकामाँझी भागलपुर विष्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार–812002,

सारांष :

गिरिराज किशोर हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में से एक हैं। उनके उपन्यासों में एक विशेष प्रकार का चिंतन मौजूद होता है। वे समाज की विसंगतियों पर प्रश्न करते नजर आते हैं। शोषितों, वंचितों, उपेक्षितों की आवाज बनने का एक प्रयास गिरिराज किशोर के उपन्यासों में देखा जा सकता है। विशेषकर 'यथा प्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' उपन्यास की बात करें तो इन दोनों उपन्यासों में उन्होंने दलित चेतना को जिस प्रकार उभारने का काम किया है, उससे कहा जा सकता है कि गिरिराज किशोर की दलित चेतना काफी जाग्रत रही है। उनके उपन्यासों की सफलता को देखकर यह कहा जा सकता है कि वे अपने उद्देश्य में काफी सफल रहे हैं। इन दोनों उपन्यासों में प्रस्तुत विमर्श को ध्यान में रखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि गिरिराज किशोर ने दलित की मूल समस्याओं का समाधान भी ढूंढने का प्रयास किया है। 'यथा प्रस्तावित' में एक उपेक्षित व्यक्ति के व्यक्तित्व का दलन किस प्रकार सरकारी व्यवस्था में उपजी अवसर शाही में होता है, इसे दिखाया है, तो 'परिशिष्ट' में यह दिखाया गया है कि एक दलित को पल्लवित होने के लिए कैसे अनुकूल माहौल की आवश्यकता होती है उसके अभाव में पिछड़ा व्यक्ति अविकसित होकर रह सकता है। दलित शब्द जो अर्थ प्रतिध्वनित करता है उसमें कहीं ना कहीं दलन से संबद्ध विचार मन में आता है। व्यक्ति का दलन उसे दलित बनाता है। यह दलन समाज में विभिन्न स्तर पर मौजूद है। जातिगत, समुदायगत, भाषागत, आर्थिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न स्तर पर इस दलन को देखा जाता है। गिरिराज किशोर ने अपने उपन्यासों में इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए उससे बचने के उपाय की तलाश करने की कोशिश की है। गिरिराज किशोर का मानना है कि दलित में जन्म लेकर दलित रहकर ही मर जाना अभिशाप के समान है। ऐसे में गिरिराज किशोर की दलित चेतना न सिर्फ साहित्य को एक दिशा देती है बल्कि समाज को भी निर्देशित करने का प्रयास करती है।

मुख्य शब्द : दलित, शिक्षा, समाज, संघर्ष, व्यवस्था, शोषण, राजनीति, उपेक्षा, दंश, जाति, भाषा, चेतना आदि।

मुख्य आलेख :

गिरिराज किशोर हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में से एक हैं। उन्होंने विभिन्न संवेदनाओं को प्रतिबिम्बित करते कई उपन्यास लिखे। उसमें दलित–विमर्श का जो रूप दिखता है वह उनपर विचार करने कलिए विवश करता है। 'दलित' शब्द समाज के सबसे ज्वलंत विषय का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ. अमरनाथ ने दलित शब्द के अर्थ को बताते हुए लिखा है – ''दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन और दमन हुआ है।''[1] दलित लेखक व चिंतक कंवल भारती ने दलित

के बारे में परिचय देते हुए लिखा है – ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे काम करने के लिए बाध्य किया गया। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक नियोग्यताओं को संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वहीं जातियं आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।''[2] इससे यह कहा जा सकता है कि दलित शब्द जो अर्थ प्रतिध्वनित करता है उसमें कहीं ना कहीं दलन से संबद्ध विचार मन में आता है। व्यक्ति का दलन उसे दलित बनाता है। यह दलन समाज में विभिन्न स्तर पर मौजूद है। जातिगत, समुदायगत, भाषागत, आर्थिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न स्तर पर इस दलन को देखा जाता है। ऐसे में समाज में दलित की ओर नजर डालते हैं तो एक भयावह स्थिति दिखती है। गिरिराज किशोर की समझ दलित के विषय में कुछ इस प्रकार है कि वे कहते हैं – ''सच पूछिये तो जातियाँ अनुसूचित नहीं होतीं (बना दी जाती है)। मानसिकता...होती है। मानना और समझना दोनों!''[3]

गिरिराज किशोर के उपन्यास व साहित्य में जो दलित के प्रति संवेदना दिखती है वह उनकी चेतना पर पड़े प्रभाव का परिणाम है। उन्होंने समाज में शोषण, अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार, दुराचार आदि का जो रूप देखा है उसे द्रवित होकर उन्होंने कलम उठाई है। 'परिशिष्ट' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है – '' इस उपन्यास को लिखने की बात पिछले कई वर्षों से दिमाग में पक रही थी। लेकिन जब तक मनुष्य स्वयं नहीं भोगता, तब तक बता भी नहीं सकता। पिछले चार–पाँच वर्षों के दौरान 'अनुसूचित' होने की मानसिकता के प्रति संवेदना का निर्माण हो जाने पर ही कलम उठाने का साहस हुआ।''[4] इस प्रकार यह साफ समझा जा सकता है कि उन्होंने यथार्थ से स्वयं को रूबरू होने देते हैं और फिर रचना के लिए कमल उठाते हैं। उनकी रचनात्मक क्षमता इतनी प्रखर है कि वे अपने भावों को प्रस्तुत करने में काफी कारगर सिद्ध होते हैं।

गिरिराज किशोर ने अपने सभी उपन्यासों में अलग–अलग प्रकार की समस्याएं उठाई हैं, परंतु 'यथा प्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' जैसे उपन्यासों में जो उन्होंने दलित चेतना का विस्तार किया है वह काबिले तारीफ है। उपन्यास को पढ़कर पाठक के मन में दलित वर्ग के प्रति जो सहानुभूति का भाव पैदा होता है वह सकारात्मक है। सकारात्मक रूप से समाज को बदलने की क्षमता साहित्यकार में होती है। एक साहित्यकार समाज को जिस दिशा में ले जाना चाहता है, वह वैसे साहित्य का सृजन करना चाहता है। वैसे साहित्य के माध्यम से वह समाज को दिशा देने का प्रयास करता है।

ऐसे में गिरिराज किशोर में राजनीति में दलितों के प्रवेश को या कहें कि राजनीति में दलित के उपयोग पर भी कटाक्ष किया है। उनके हिसाब से नेताओं का दलितों पर बात करना उनकी राजनीतिक मजबूरी हो गई है। इसी वजह से सवर्ण मानसिकता के नेताओं द्वारा भी दलितों के प्रति सहानुभूति वाले कथन या व्यवहार देखने को मिलते हैं। 'परिशिष्ट' उपन्यास का में नेता के रूप में आए चौधरी जी का बावनराम से जो संबंध है वह राजनीतिक संबंध है। चूँकि बावन राम के समाज का एकमुश्त वोट चौधरी जी को पड़ता है। चौधरी जी स्वयं बावनराम का परिचय अपने लोगों से कराते हुए कहते हैं – ''ये हमारे शुभ चिन्तक बावनराम जी हैं...यह समझ लीजिए कि पिछला चुनाव इन्हीं के बूते जीता गया। आठ सौ सालिड वोट डलवाई थीं। कुल पाँच–सौ से हार–जीत हुई...हमारे क्षेत्र में इतना तगड़ा इलेक्शन कभी नहीं हुआ ये अपनी जाति में बेताज बादशा हैं।''[5]

हालांकि उसके बाद भी बावनराम को अपेक्षा ही मिलती है। उस उपेक्षा का दर्शन यह बताता है कि गिरिराज किशोर को की चेतना यहां जागृत है और वह यह महसूस करती है कि दलितों का उपयोग भर राजनीति में हो रहा है। सही रूप से उसका कल्याण करने का की मनसा नहीं देखी जाती। बावनराम का बेटा अनुभव को आईआईटी में दाखिला

नहीं लेनी चाहिए। उसको उच्च शिक्षा में जाने से रोकने के जो कारण बनाए जाते हैं, वो दलितों के प्रति उनकी सोच को अभिव्यक्त करते हैं।

उच्चकुलीन लोगों के व्यवहारों से दलित व्यक्ति किस प्रकार क्षुब्ध होता है उसे 'परिशिष्ट' उपन्यास के बावनराम की इन पंक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है– ''चौधरी साहब, हम यह बात एक मिनट के लिए नहीं भूले कि भगवान ने हमें नीच बनाया है....इसलिए अपनी सीमाओं का हमेशा ध्यान रखा। मेरी समझ में नहीं आता कि अपने को इतनी–इतनी ऊँचाइयों पर आसनी समझनेवाले लोगहमको नीच बताने के लिए अपनी उन ऊँचाइयों से इतना नीचे क्यों उतर आते हैं?''[6]

गिरिराज किशोर के मन–मस्तिष्क पर जाति का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि वे कुछ भी अच्छा देखते हैं तो उसे लगता है यह उच्च वर्ग का है। बुरा को मानो वे आत्मसात कर लिये होते हैं। यही वजह रही है कि गिरिराज किशोर ने 'परिशिष्ट' उपन्यास में अनुकूल के चरित्रांकन के क्रम में उसके समाज के लोगों की उसके प्रति क्या मान्यता है उसे भी लिखा है। ''अपनी उम्र के हिसाब से अनुकूल का कद लम्बा निकला था। काठी भी अच्छी थी। लोगों का कहना था, बाँभन–ठाकुर का–सा लगता है। आँखें बड़ी थीं। बाल घुंघराले थे।''[7] यहाँ साफ देखा जा सकता है कि बड़ी–बड़ी आँखें, घुंघराले बाल, लंबी कद–काठी बाँभन–ठाकुर की जाति का प्रतीक हो गया है। मानसिक स्तर पर यह दलित चेतना का चित्रण गिरिराज किशोर ने किया है।

लेकिन गिरिराज किशोर की चेतना बताती है कि अब समय में बदलाव हो रहा है। अब नीच जाति कहलाने वाले भी प्रश्न उठाते हैं। आवाज उठाते हैं चिल्लाकर नहीं दबी जुबान में ही सही परन्तु वे प्रतिकार तो करते हैं। चौधरी साहब से अनुकूल के लिए सिफारिश करने आए बावनराम जब चौधरी साहब से कहता है– ''यह बच्चा इसलिए पैदा नहीं हुआ कि बाप की तरह लोहा–लंगड़ ढोये। ऊपर से बूटों की मार पड़े।''[8]

कथाकार गिरिराज किशोर की साहित्यिक चेतना के बारे में कृष्णदत्त पालीवाल की पंक्तियां हमें समझाने में सक्षम हैं कि ये किस प्रकार सोचते हैं और साहित्य सृजन करते हैं –''व्यापक जिंदगी की असलियत को पहचाने में लगा रचनाकार 'जुगलबंदी' जैसा उपन्यास लिखे या 'यथा प्रस्तावित' जैसा उपन्यास या 'चिड़ियाघर' जैसा उपन्यास वह जिंदगी के खोखलेपन और टुच्चेपन को झेलकर लिखता है।''[9]

'यथा प्रस्तावित' में बालेसर की कथा से जिस प्रकार शोषण का प्रतिबिंब खींचा गया है, उससे पता चलता है गिरिराज किशोर ने संविधान सम्मत नियम कानून से बने समाज में भी शोषित वंचित होने किस गुंजाइश को ढूंढ निकाला है। जो फाइल दर फाइल प्रस्तावित चीजें घूमती रहती हैं बालेश्वर इसे सहन नहीं कर पाता। वह विचलित होता है और कहें तो विक्षिप्त हो जाता है। यह व्यवस्था मजदूर तबके के लोगों को प्रताड़ित करती है। उसका शोषण करती है। उसे विक्षिप्त होने के लिए छोड़ देती है। इस उपन्यास में बालेश्वर ने अपने आवेदन में डेलीवेज पर काम करने और उससे मिले अल्प वेतन के बारे में लिखा है – ''मैं आपसे पुनः निवेदन करना चाहता हूँ कि जो पैसा दैनिक वेतन के रूप में मुझे या मेरे अन्य साथियों को मिलता है उससे दो वक्त की रोटी का भी पूरा नहीं पटता। अगर यह सीना–फाड़ मेहनत दो वक्त की सूखी रोटी भी मोहय्या न कर सके तो इस मेहनत और मेहनत करनेवालों का होना या न होना बराबर है। मेरे बूढ़े माँ–बाप बिना इलाज के दम तोड़ रहे हैं। पत्नी गर्भवती है। जब उसी के मुँह को एक सालिम टुकड़ा नहीं मिलता तो उसके अंदर पलते उस जीव को तो कुछ मिलने का सवाल ही नहीं उठता। अगर मेरी सेवाएँ नियमित हो गई होतीं तो मेरे बूढ़े माँ–बाप को भी अन्य कर्मचारियों की तरह दवा दारू मुफ्त मिलती और घरवाली की भी निःशुल्क देखभाल हो जाती। लेकिन

डेलीवेज मजदूर होने के कारण नि:शुल्क चिकित्सा तो नि:शुल्क चिकित्सा, दवा घोटनेवाले खरल के घोल का रंगीन पानी तक नसीब नहीं होता। घरवाली सरकारी अस्पताल में दिखाने जाती है। पर्ची बनवाने के लिए लाइन में दो–चार घंटे लगने के बाद टटोल–टटाल कर देख तो लेते हैं पर बाजार से खरीदने के लिए दवा की एक लंबी फेहरिस्त भी लिख देते हैं। हँसी भी आती है और दुख भी होता है। आय खरीदा नहीं जा सकता तो दवा कहाँ से खरीदी जाएगी।''[10]

ऐसा नहीं कि इसकी सेवाएँ नियमित कर देने में किसी की निजी कोई क्षति है, नहीं कोई क्षति नहीं। फिर भी ऐसा क्यों, क्योंकि अधिकारी के मन में जो अपना अहंकार पल रहा होता है उसे बेवजह चोटिल होने की आदत पड़ गई है किसी किसी बात पर चोटिल हो जाता है।

समाज में दलन की जो अवधारणा है उसे समझने से यह साफ पता चलता है कि नैतिकता के पतन से दलन की उपज होती है। '' 'परिशिष्ट' और 'यथा प्रस्तावित' हिंदी के इने–गिने उपन्यासों में इसलिए आते हैं कि उन्होंने हमारी अपनी अर्थहीनता पर ही अंकुश लगाया है।''[11] गिरिराज किशोर ने अपने उपन्यासों में दलित चेतना को बहुत गहराई से प्रस्तुत किया है। वे मानते रहे कि दलित वर्ग की समस्याओं को लेकर जलो परिवर्तन आए हैं उनके साथ अभी लेखक पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है। '' **(उपन्यास शिल्पी गिरिराज किशोर, पृ. 46)** लेखक की यही चिन्ता उसकी चेतना पर घर कर गई और उसे दलित की स्थिति पर लिखने को विवस करती रही।

निष्कर्ष :

किसी व्यक्ति का दलन उसे दलित की श्रेणी में लाता है। यह दलन समाज में विभिन्न स्तर पर मौजूद है। गिरिराज किशोर ने अपने उपन्यासों में इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए उससे बचने के उपाय की तलाश करने की कोशिश की है। गिरिराज किशोर का मानना है कि दलित में जन्म लेकर दलित रहकर ही मर जाना अभिशाप के समान है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गिरिराज किशोर उपन्यासकार के रूप में गिरिराज किशोर ने जो अपनी दलित चेतना का परिचय दिया है वह दलित साहित्य को समृद्ध करने में काफी सहायक है उन्होंने हिंदी साहित्य में दलित विमर्श को एक स्पष्ट आयाम देने का कार्य किया है उनकी रचना धार्मिकता ने उन्हें इस विषय में जो भी प्रस्तुत करने को प्रेरित किया वह अनुपम है वह दलितों के हित में मानवता के हित में है और इससे दलितसाहित्य काफी समृद्ध और प्रभावकारी हुआ है गिरिराज किशोर का मानना है कि दलित में जन्म लेकर दलित रहकर ही मर जाना अभिशाप के समान है। ऐसे में गिरिराज किशोर की दलित चेतना न सिर्फ साहित्य को एक दिशा देती है बल्कि समाज को भी निर्देशित करने का प्रयास करती है।

संदर्भ–सूची :

1. डॉ. अमरनाथ. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2018. पृ. 171

2. वही.

3. किशोर, गिरिराज. परिशिष्ट. नई दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, 2011. पृ. 11

4. वही.

5. वही, पृ. 44

6. वही, पृ. 81

7. वही, पृ. 17

8. वही, पृ. 72

9. किशोर, गिरिराज. यथा प्रस्तावित. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मण्डल, 2013. पृ. 5–6

10. वही, पृ. 44

11.. अरविंदाक्षण, डॉ. ए. . उपन्यास शिल्पी गिरिराज किशोर. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2000. पृ. 8

12. वही, पृ. 46

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation